संत-असंत

(धर्म-ग्रंथों की दृष्टि में)

एस० कौसर लईक़

विषय-सूची

संकेत-विवरण

अथर्व॰	=	अथर्ववेद
अग्नि॰ पु॰	=	अग्नि पुराण
अनुशा॰	=	महाभारत का अनुशासन पर्व
आदि॰	=	महाभारत का आदिपर्व
उ॰का॰	=	रामायण का उत्तर काण्ड
उ॰	=	बाइबल की पुस्तिका उत्पत्ति
कृ॰ज॰पू॰	=	कृष्ण-जन्म खण्ड पूर्वार्ध
कुर॰	=	कुरआन मजीद
चौ॰सं॰सं॰	=	चौखम्भा संस्कृत संस्थान
तिर्मिज़ी॰	=	अबू-ईसा मुहम्मद तिर्मिज़ी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
ध॰शा॰सं॰	=	धर्मशास्त्र संग्रह
प्रका॰	=	प्रकाशक, प्रकाशन
बाइ॰	=	बाइबल धर्मग्रन्थ
बृह॰	=	बृहदारण्यकोपनिषद्
गीता॰	=	श्रीमद्भगवद्गीता
ब्र॰वै॰पु॰	=	ब्रह्मवैवर्त महापुराण
बुख़ारी	=	इमाम मुहम्मद-बिन-इस्माईल बुख़ारी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
भविष्य	=	भविष्य महापुराण
मत्स्य॰ पु॰	=	मत्स्य महापुराण
महाभा॰	=	महाभारत
महो॰	=	महोपनिषद्
गो॰तु॰दा॰	=	गोस्वामी तुलसीदास जी
मं॰सं॰	=	मन्त्र संख्या
मुस्नद अहमद	=	इमाम अहमद-बिन-हम्बल द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
मुस्लिम	=	इमाम मुस्लिम इब्न अल-हज्जाज द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
यजु॰	=	यजुर्वेद
ऋ॰	=	ऋग्वेद
वन॰	=	महाभारत का वनपर्व
वा॰रा॰	=	वाल्मीकि रामायण
रा॰मा॰	=	रामचरित मानस
सभा॰	=	महाभारत का सभा पर्व
शान्ति॰	=	महाभारत का शान्ति पर्व

"दयावान, कृपाशील ईश्वर के नाम से।"

भूमिका

आज हम जिधर देखते हैं, उधर ही समाज में एक घृणित प्रकार का उत्पात दिखाई देता है। कुछ लोग मुख से बोलते नहीं, वरन् ज़हर उगलते हैं। अफ़सोस तो और अधिक तब होता है कि जब ऐसा करनेवाले अपने आपको धार्मिक, धर्म-रक्षक और समाज का नेतृत्वकर्ता कहते हैं। ऐसा नहीं है कि इस दुष्टता में मात्र एक सम्प्रदाय, जाति या धर्म के लोग हैं, बल्कि न्यूनाधिक सभी समाज के लोग इसमें सम्मिलित हैं। यद्यपि बाइबल, वेद, क़ुरआन और अन्य सभी धर्म-ग्रंथों की शिक्षाओं का लक्ष्य मनुष्य को ईशपरायण बनाने के साथ ही सुसज्जनता एवं नैतिकता के उच्च शिखर पर ले जाना और सुचरित्र बनाना है। सभी धर्मग्रन्थ साहचर्य, भ्रातृत्व और प्रेम का सन्देश देते हैं। किन्तु खेद है कि अधिकतम लोग अपने धर्म-ग्रंथों की शिक्षाओं से अनभिज्ञ हैं और कुछ लोग यदि जानते हैं तो कतिपय सत्यवादियों के अतिरिक्त प्रायः पक्षपात में इतने अन्धे हो चुके हैं कि अर्थ-अनर्थ उन्हें कुछ सूझता नहीं। वे बड़ी होशियारी से सच्चाई को छिपा ले जाते हैं। वे सच्चाई पर मिथ्या का ऐसा रंग चढ़ाते हैं कि सत्य यथार्थ रूप में सामने आ ही नहीं पाता। भोली-भाली जनता उनके मिथ्या जाल में फँसकर रह जाती है। अतएव आवश्यकता है कि सुहृदयता और सच्चाई से काम लिया जाए। अपने धर्म-ग्रंथों की ओर पलटें और मात्र अपने धर्म-ग्रंथों का ही नहीं, बल्कि विभिन्न धर्मों का निष्पक्ष एवं हृदयता के साथ अध्ययन किया जाए और अपने जीवन में उनकी शिक्षाओं को स्थान दिया जाए।

भारत में सबसे अधिक पढ़े जानेवाले धर्म-ग्रंथों में एक धर्म-ग्रंथ गोस्वामी तुलसीकृत रामायण 'रामचरित मानस' है। यद्यपि यह एक महाकाव्य है, किन्तु इसकी हिन्दू समाज में बड़ी लोकप्रियता है और इसका बड़ा आदर पाया जाता है। इस ग्रंथ की रचना पन्द्रहवीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा की गई थी। गीता प्रेस के संपादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी के अनुसार इसकी रचना तुलसीदास जी ने दो साल, सात महीने, छब्बीस दिन में

पूरी की।[1] इस महाकाव्य में श्लोक, चौपाई, दोहा, सोरठा और छन्द सभी काव्यरूपों यानी पदों का प्रयोग हुआ है। इन सभी को मिलाकर कुल पदों की संख्या 10,664 है।[2] यह ग्रंथ प्रमुख रूप से अवधी भाषा में है, यद्यपि इसमें अरबी, उर्दू, फ़ारसी, तथा अन्य विभिन्न भाषाओं के भी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इस ग्रंथ में श्री रामचन्द्र जी के चरित्र-चित्रण के साथ अनेकानेक मानवहितकारी एवं चरित्रवान बनानेवाली शिक्षाएँ पेश की गई हैं। इसी प्रकार वैश्विक स्तर पर सबसे अधिक पढ़े जानेवाले ग्रंथों में धर्म-ग्रंथ क़ुरआन है। क़ुरआन इस्लाम धर्म का मूल ग्रंथ है। इस ग्रंथ की मूल भाषा अरबी है। इसका संसार की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध है। इस ग्रंथ में जो पद पाए जाते हैं, उनको आयत कहा जाता है और अध्याय को सूरा या सूरत (सूरह) बोला जाता है। इसमें कुल अध्याय 114 है और एक गणनानुसार कुल आयतें 6666 हैं। क़ुरआन की मूल शिक्षा एकेश्वरवाद, ईशदूतत्व (रिसालत), परलोकवाद (आख़िरत) पर आधारित है और मनुष्य को सुचरित्र बनाने के अतिरिक्त मनुष्य के चहुमुखी विकास करने हेतु बड़ी प्रभावकारी शिक्षाएँ क़ुरआन में पाई जाती हैं। अधिक पढ़े जानेवाले ग्रंथों में एक और धर्म-ग्रंथ : 'बाइबल' है। यह ईसाई धर्म का प्रमुख धर्म-ग्रंथ है। यह दो भागों में विभक्त है : (1) पुराना नियम (Old Testament) (2) नया नियम (New Testament)। दोनों नियम छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का संग्रह हैं। पुराने नियम में 39 और नया नियम में 27 पुस्तिकाएँ हैं। प्रत्येक पुस्तक में अध्याय हैं और अध्याय पदों पर आधारित हैं। सम्पूर्ण बाइबल में कुल अध्याय 1189 और कुल पदों की संख्या 31175 है। बाइबल की भी मूल शिक्षा एकेश्वरवाद, ईशदूतत्व, परलोकवाद और मनुष्य को चरित्रवान बनाने पर आधारित है।

लोगों में पढ़ा जानेवाला एक ग्रंथ महाभारत भी है। यह संस्कृत का महाकाव्य है। इसका एक अपना महत्व है। इसी महाग्रंथ में सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ग्रंथ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता सन्निहित है। महाभारत 18 पर्वों में विभक्त है। पर्व अध्यायों पर और अध्याय श्लोकों पर आधारित हैं। इसके कुल श्लोकों की संख्या एक लाख दस हज़ार है, एक अन्य गणना के अनुसार यह संख्या एक लाख चालीस हज़ार भी मानी जाती है।

1. दे० गो०तु०दा० जी की संक्षिप्त जीवनी, रामायण, पृ०-10
2. दे० मानस वृत्तकोश, पृ०-349

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू धर्म का हृदय मानी जाती है। इसमें 18 अध्याय और कुल श्लोक 700 हैं।

हिन्दू धर्म का आधार एवं मूल ग्रन्थ वेदों को माना जाता है। ये चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। चारों वेदों में प्रयुक्त हुए कुल मंत्रों की संख्या (एक गणनानुसार) 20,417 है। इनमें से 10,580 मंत्र ऋग्वेद में, 1975 मंत्र यजुर्वेद में, 1875 मंत्र सामवेद में एवं 5987 मंत्र अथर्ववेद में संकलित हैं। इनमें बहुत से मंत्र उभयनिष्ठ हैं। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'ज्ञान' होता है। अतः वेदों को ज्ञान का भण्डार माना जाता है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि धर्म-ग्रन्थ हैं। जो उच्च नैतिक शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं। आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब सिख-धर्म का पवित्र धर्म-ग्रन्थ है। इसमें कुल 1430 पृष्ठ हैं। यह मूलतः गुरुमुखी लिपि में है। अब यह ग्रंथ साहिब हिन्दी लिप्यांतरण एवं अनुवाद में भी उपलब्ध है। इसकी मूल शिक्षा एकेश्वरवाद के अतिरिक्त मानव-प्रेम, एकता, उदारता और चरित्रवान बनाने पर आधारित है।

जैसा कि हमने शुरू में ही उल्लेख किया है कि सभी धर्म-ग्रंथों की शिक्षाओं का मूलोद्देश्य मनुष्य को ईशपरायण, धर्मपरायण और सुचरित्र बनाना है। अतएव संसार में पाए जानेवाले सभी धर्म-ग्रंथों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अपनी शैली में लोगों को चरित्रवान एवं गुणवान बनानेवाली शिक्षाएँ दी हैं। यह पुस्तक, जो आपके हाथ में है, इसमें उन्हीं कुछ शिक्षाओं के द्वारा हमने मनुष्य की भावनाओं को जगाने एवं उत्प्रेरित करने का प्रयास किया है। इसमें विशेष रूप से इस भावना को जागृत करने की कोशिश की गई है कि लोग ध्यानपूर्वक अपने धर्मग्रंथों का अध्ययन करें और चिंतन-मनन से काम लें; और इतना ही नहीं कि केवल अपने धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करें, वरन् विभिन्न धर्म के धर्म-ग्रंथों को भी निष्पक्ष भाव से पढ़ें। इस प्रकार अध्ययन करने के बाद वे स्वयं जान सकेंगे कि धर्म की मूल शिक्षा क्या है और वे कहाँ खड़े हैं?

धर्म-ग्रंथों से ज्ञात होता है कि समष्टीय रूप से और चारित्रिक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-समाज मुख्यतः दो वर्ग में विभक्त है—एक सुसज्जन एवं सुचरित्र लोगों का वर्ग; दूसरा दुर्जन एवं दुष्ट लोगों का। ग्रन्थ रामचरित मानस इन दोनों वर्गों को क्रमशः 'संत' और 'असंत' की संज्ञा देता है। यानी

सुचरित्र एवं सज्जन लोगों को संत कहता है और दुष्ट, दुराचारी एवं चरित्रहीन दुर्जनों के वर्ग को 'असंत' कहता है। इस पुस्तिका में विभिन्न धर्म-ग्रंथों के प्रकाश में इन दोनों वर्गों के चरित्र का संक्षिप्त में चित्रण किया गया है और इसके लिए उत्प्रेरित करने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य देखे कि वह स्वयं किस वर्ग में आता है? उसमें किस वर्ग की विशेषताएँ अधिक पाई जाती हैं? यदि वह अपने आपको असन्त वर्ग में पाता है, तो उसे चाहिए कि वह अपना सुधार करे और यदि संतों के गुण उसमें पाए जाते हैं, तो ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे तथा उन सद्गुणों को और अधिक बढ़ाने का प्रयास करे।

अन्त में आदरणीय मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही साहब का आभार व्यक्त करता हूँ कि आपके ही सहयोग और सहानुभूति से यह पुस्तक लिखी जा सकी। मानव-समाज में प्रेम, भ्रातृत्व और साहचर्य बना रहे और बढ़ता रहे, इसके आप एक अनुपम याचक हैं। मेरा एहसास है कि आपके हृदय में मानवता के प्रति बड़ी संवेदना एवं सहानुभूति पाई जाती है। तत्पश्चात् माननीय मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ान साहब (सुप्रसिद्ध इस्लामिक विद्वान एवं सैकड़ों पुस्तकों के लेखक तथा क़ुरआन मजीद के हिन्दी-उर्दू के लोकप्रिय अनुवादक), इन्तिज़ार नईम साहब (अध्यक्ष इस्लामिक साहित्य ट्रस्ट) एवं डॉ॰ टेकचन्द बुन्देला (रिटायर्ड मेडिकल ऑफ़ीसर) का आभार व्यक्त करता हूँ कि इन महानुभावों ने मेरे हौसले को बनाए रखा।

इस पुस्तक के लिखने में यथासम्भव इसका ध्यान रखा गया है कि किसी भी समुदाय, वर्ग या व्यक्ति को किसी भी दृष्टि से ठेस न पहुँचने पाए और न कोई अपमानित हो, किन्तु लोगों को जगाने का कार्य अवश्य किया जाए। इस प्रस्तक में धर्म-ग्रन्थों से उद्धरण उद्धृत करने में बड़ी सतर्कता से काम लिया गया है। अधिकतम उद्धरण मूल स्रोतों से लिए गए हैं। त्रुटियों का रह जाना मनुष्योचित है। अतः किसी को कोई त्रुटि मिलती है, तो सूचित किए जाने और उचित पाए जाने पर हम अपना सुधार अवश्य करेंगे।

ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारे इस प्रयास को स्वीकृति प्रदान करे और लोग इस पुस्तिका से लाभ उठा सकें।

—एस॰ कौसर लईक़

03 नवम्बर 2021 ई॰

संत-असंत
(धर्म-ग्रंथों की दृष्टि में)

मनुष्य ईश्वर की उत्तम कृति है

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने—काकभुसुण्डि एवं गरुड़ के संवाद में काकभुसुण्डि जी के वचन—उद्धृत करते हुए कहा है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत तेही।।

अर्थात् "मनुष्य-शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव इसकी याचना करते हैं।"

इसी प्रकार शान्ति पर्व में कहा गया है—

न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।। (99/20)

अर्थात् "मनुष्ययोनि से बढ़कर कोई उत्तम योनि नहीं है।"

और क़ुरआन ने कहा—

लक़द् ख़लक़्नल् इन्सा-न फ़ी अह्सनि तक़वीम।। (95/4)

"हमने (अर्थात् ईश्वर ने) मनुष्य को सर्वोत्तम संरचना के साथ पैदा किया।"

व लक़द् कर्रम्ना बनी आद-म।। (क़ुरआन 17/70)

"यह ईश्वरीय कृपा है कि ईश्वर ने मनुष्य को (सम्पूर्ण सृष्टि में) श्रेष्ठता प्रदान की।"

'मनुष्य' अर्थात् जगत् में ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम कृति और वह

कृति कि रामायणानुसार जिसकी सम्पूर्ण चर-अचर ईश्वरीय सृष्टि यह अभिलाषा करती है कि काश! उसे मनुष्य का शरीर मिल जाता या मिल जाए और क़ुरआन के अनुसार कि वह संरचना में सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठ है। अब प्रश्न यह उठता है कि आख़िर इस मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम क्यों कहा जा रहा है? इस तथ्य पर जब यथातथ विचार किया जाता है तो ज्ञात होता है कि जगत् के समस्त जीवों की तुलना में एक मनुष्य ही है जिसमें कई प्रकार के दैवीय एवं दिव्य गुणों की अधिकता पाई जाती है। यह मनुष्य ही है जिसमें दया, करुणा, प्रेम, कोमलता, परोपकार, विनय एवं आत्मीयता आदि नैतिक गुणों के होने और जिससे समस्त नैतिक मूल्यों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। हम देखते भी हैं कि नैतिक विधान और नैतिक शिष्टाचार की शिक्षा मात्र मनुष्य के लिए ही पाई जाती है। अब यदि मनुष्य का शरीर पाकर मानव केवल अपना पेट भरने, प्रजनन करने और जीवित रहने के लिए संघर्ष में लगा रहे; तो स्पष्ट है कि उसने मनुष्य का शरीर धारण करने की न केवल उपेक्षा की और उसका अपमान किया, बल्कि उसने मानव-देह देनेवाले की योजना एवं उद्देश्य को जाना ही नहीं। क्योंकि केवल भूख मिटाने, प्रजनन करने और जीवित रहने का संघर्ष सामान्य जीवित प्राणियों एवं पशुओं का होता है। वस्तुतः मनुष्य वह है, जो अपनी भूख मिटाता है, किन्तु भूखे को देखकर उसकी भूख मिटाने की पूरी कोशिश भी करता है और कभी-कभी वह अपना खाना दूसरे को खिलाकर ख़ुद भूखा रह जाता है। वह प्रजनन-क्रिया करता है, किन्तु कई मर्यादाओं और नियमों का पालन करते हुए। वह जीवित रहने के लिए संघर्ष करता है, लेकिन दूसरे की जीवन-रक्षा हेतु अपने जीवन का परित्याग भी कर देता है। उपरोक्त के अतिरिक्त वह यह चिन्तन करता है कि उसे यह शरीर और यह जीवन क्यों मिला है? इस जीवन का महत्व क्या है? इत्यादि।

फिर यह मनुष्य ही है, जो दूसरों को दान देकर, दूसरे की सहायता करके, दूसरे को जीवन प्रदान करके, दूसरे की रक्षा एवं सेवा करके प्रसन्नता का एहसास करता है। वह मनुष्य ही है जो अपनी वाणी से अपने विचारों को व्यक्त कर सकता है और दूसरों के विचारों को सुनकर अपनी प्रतिक्रिया सविस्तार

वाचिक एवं कर्म दोनों रूप में व्यक्त कर सकता है। यह मनुष्य ही है जिसमें दूसरे को पीड़ित देखकर स्वयं में पीड़ा की समानुभूति होती है और दूसरे के दुख को देखकर स्वयं दुखी हो उठता है और दुखियारे को दुख से उबारने का प्रयास भी करता है। यद्यपि उपरोक्त प्रकार के ये सभी दिव्य एवं उच्च्य गुण उसी मनुष्य में जागृत एवं सक्रिय होते हैं, जिसमें मनुष्यता और मानवता के तत्व जागृत अवस्था में होते हैं। किन्तु जिसका अन्तःकरण मृतप्राय और चेतनाहीन होता है तथा जिसमें पशुता व मानवहीनता प्रभावी होती है, उसके आचरण और व्यवहार को देखकर स्पष्टतः एहसास किया जा सकता है कि उसमें और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं। कभी-कभी मृत अन्तःकरणवाले दुष्ट मनुष्य पशुत्व से भी निम्न स्तर में देखे जा सकते हैं। ऐसे मनुष्य का जीवन जीवित रहते हुए भी निरर्थक एवं अन्य के लिए कष्टदायक होता है और ऐसे लोगों को मरने के बाद भी उनको कोई अच्छे शब्दों के साथ याद भी नहीं करता। वस्तुतः याद उसी को किया जाता है जो दूसरों के हितार्थ और मानवता के लिए जीता है। राष्ट्रीय महाकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की यहाँ पर ये पंक्तियाँ बड़ी ही प्रेरणादायक हैं—

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी।
मरो परन्तु यों, मरो कि याद जो करे सभी।।
हुई न यों सुमृत्यु जो वृंथा मरे, वृथा जिए।
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।।
वही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरें।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

(साभार : हिन्दी विमर्श, अध्याय-4, मनुष्यता)

अर्थात् "मनुष्य को ज्ञात होना चाहिए कि वह मरणशील है, इसलिए उसे मृत्यु से डरना नहीं चाहिए, किन्तु उसे ऐसी अच्छी मृत्यु को प्राप्त होना चाहिए, जिससे सभी लोग मृत्यु के बाद भी याद करें। ऐसे व्यक्ति का जीना या मरना व्यर्थ है, जो स्वयं के लिए जीता हो। ऐसे व्यक्ति पशु के समान हैं। असल मनुष्य वह है जो दूसरों की भलाई करे, उनके लिए जिए। ऐसे व्यक्ति को लोग मृत्यु के बाद भी याद रखते हैं।"

मनुष्य के दो प्रकार

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण जी के वचन हैं—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।। (16/6)

अर्थात् "इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय दो ही प्रकार का है। (एक तो) दैवी प्रकृतिवाला और (दूसरा) आसुरी प्रकृतिवाला।"

उपकार एवं मानवता ऐसे उच्च गुण हैं, जो वास्तव में मनुष्य के मनुष्य होने को परिभाषित करते हैं। इन्हीं उपकार एवं मानवता के गुणों की विद्यमानता या अविद्यमानता (विलुप्तता) के आधार पर मनुष्यों के दो वर्ग हो जाते हैं। एक वह वर्ग जिसके लोगों का अन्तःकरण मानवता के उच्च गुणों एवं मूल्यों से परिपूर्ण तथा जागृत है और दूसरा वह वर्ग जिसका अन्तःकरण मृतप्राय, संवेदनहीन और मानवीय उच्च गुणों से रिक्त है। इस दूसरे वर्ग में पाशविक गुणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता, बल्कि उससे भी निम्न स्तर के दुर्गुणों का पुँज होता है। उसकी जीवन-शैली में मात्र अपना पेट भरना, स्वयं जीवित रहने एवं सुख-प्राप्ति की कोशिश करना होता है। यह दुष्ट वर्ग अपने सुख और स्वार्थ हेतु दूसरों को मिटा देने में भी कोई संकोच नहीं करता, बल्कि कुछ का यही उद्योग होता है। भारतीय विद्वानों और मनीषियों ने इस सन्दर्भ में गहन विचार करने के पश्चात् इन दोनों वर्गों को अपने विषय और प्रसंगानुसार अलग-अलग संज्ञाएँ दी हैं। जब उन्होंने सद्गुणधारियों को देवता, सुर, देव, आदित्य या संत कहा, तब दुष्ट और दुराचारी लोगों के लिए दानव, असुर, दैत्य, राक्षस और एक विशिष्ट एवं व्यापक शब्द 'असंत' शब्द का प्रयोग किया। गोस्वामी तुलसीदास जी एवं अन्य भारतीय मनीषियों ने अपने-अपने महाकाव्य और रचनाओं में इन सभी शब्दों को संदर्भानुसार इस्तेमाल किया है, लेकिन नेक और सज्जन लोगों के लिए 'संत' और दुष्ट एवं दुराचारियों के लिए असंत शब्द मुख्यता एवं प्रचुरता से इस्तेमाल किया है। बाइबल में भी संत के लिए सैंट (Saint) और इसके अन्य समानार्थक शब्द तथा 'असंत' के लिए फेंड (Fiend) और अन्य इसके पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार क़ुरआन एवं हदीसशास्त्रों में सन्त के लिए मोमिन, मुत्तक़ी और स्वालेह तथा असन्त

के लिए 'फ़ासिक़', ज़ालिम, ख़बीस आदि शब्द इस्तेमाल हुए हैं।

मनुष्यों के उस वर्ग को जिसमें दया, करुणा, न्याय, निष्पक्षता, प्रेम, दृष्टि की व्यापकता, यानी मानवता के गुण और मूल्य पाए जाते हैं, जिन्हें श्रीमद् भगवद्गीता 'दैवी' प्रकृतिवाला कहती है, उन्हें 'सन्त' और इसके विपरीत आचरणविहीन दुष्ट लोगों को, जिन्हें श्रीमद्भगवद्गीता 'आसुरी' प्रकृतिवाला नाम देती है, 'असन्त' की संज्ञा देते हुए आगे हम धर्म-ग्रन्थों के प्रकाश में कुछ और विस्तार से वार्ता करेंगे—

संत

धर्मशास्त्रों ने मनुष्यों के उस उच्च एवं सुचरित्र व्यक्तित्व या मानव-वर्ग को 'संत' कहा है, जो अत्यन्त सुहृदय एवं उदार होते हैं। महाभारत की दृष्टि में संतजन सत्य का अभिनन्दन करनेवाले,[1] सत्य का आदर करनेवाले[2] शरण में आए शत्रुओं पर भी दयालु[3] और दुखी लोगों के आश्रयदाता होते हैं।[4] सन्तजन दूसरों के वैर को भुलाकर उनके मात्र उपकारों को याद रखते हैं।[5] ये ऐसे सुहृदय उत्तम पुरुष होते हैं कि जो किसी से भी वैर नहीं रखते।[6] संतजन स्वभाव से ही विनयशील[7] एवं दयाभाव रखनेवाले होते हैं।[8] ये उपकार करते हुए यह नहीं देखते कि कोई क्या प्रतिक्रिया देगा[9]। ये जो भी शुभ-कार्य करना चाहते हैं, वाणी से नहीं कहते।[10] इनकी शिक्षाएँ एवं आचरण तीन बिन्दु पर आधारित होते हैं—किसी से द्रोह न करना, दान करना और सत्य बोलना।[11] किसी से भी मन, वाणी और कर्म द्वारा द्रोह न करना और सभी पर दया करना इनका सनातन धर्म होता है।[12] इनका यही चरित्र लोगों को आकर्षित करता है और लोग इनसे सहज ही प्रेम करते हैं।[13]

क़ुरआन में सन्तों के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे ईश्वर से डर कर जीवन गुज़ारते हैं और परलोक का भय रखते हैं।[14] सन्तों की कथनी और करनी में विरोधाभास नहीं होता, सन्त आचरण के सच्चे होते हैं।[15] संत सच्चों का साथ देते हैं,[16] वे फ़साद नहीं फैलाते[17] और न किसी पर झूठा आरोप लगाते हैं।[18]

1. 1/93/11, 2. 1/93/25, 3. 3/297/36, 4. 1/88/12, 5. 2/72/9, 6. 2/73/6, 7. 3/207/48, 8. 3/297/35, 9. 2/73/7, 10. 2/77/30, 11. 2/207/94, 12. 3/297/35, 13. 3/297/42, 2/223, 5/57, 112, 118, 15. 61/2,3, 16. 5/88, 9/119, 59/18, 17. 7/85, 18. 24/17,

संत किसी के प्रति भी दुर्भावना नहीं रखते, बल्कि सभी के प्रति सद्भाव रखते हैं।[1] वे पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार अपनाए रखते हैं।[2] व्यभिचार से अपने को बचाए रखते हैं।[3] संत का एक विशिष्ट गुण होता है कि वे किसी भी निर्दोष मनुष्य की हत्या नहीं करते।[4]

क़ुरआन में सन्तों (मोमिनों) के सम्बन्ध में स्पष्टतः कहा गया है–

ये लोग धैर्यवान, सत्यवान, दानशील और (ईश्वर के) आज्ञाकारी होते हैं। (3/17) ये खुले और छिपे (पुण्य कार्य में अपना माल) ख़र्च करते हैं। बुराई का उत्तर भलाई से देते हैं। (13/23) ये अपने वचन के सच्चे होते हैं। ईश्वर उनके कर्मों का हिसाब लेगा यह याद करके डरते रहते हैं। (13/20-21)

क़ुरआन में सन्तों (मोमिनों) का एक ख़ास गुण यह भी बताया गया है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपने मुक़ाबले दूसरों को प्राथमिकता देते हैं अर्थात् पहले दूसरों का हित हो, उनका यह प्रयास होता है। कहा गया–

व युअसिरू-न अला अन्फ़ु-सिहिम् व लौ का-न बिहिम् ख़सासह।

(क़ुरआन, 59/9)

"अर्थात् और अपनी अपेक्षा वे दूसरों को प्राथमिकता देते हैं, चाहे वे स्वयं उसके मुहताज हों।"

श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को संतों (दैवी-सम्पदावालों) के लक्षण बताते हुए कहा–

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मर्दवं हीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

(श्रीमद्भग॰ 16/2-3)

"मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, सत्य और प्रिय बोलना, अपना अपकार (बुरा) करनेवाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तः करण की उपरति यानी चित्त

1. 24/12, 2. हदीसशास्त्र : बुख़ारी एवं मुस्लिम, 3. 47/5, 4. 4/93

की चंचलता का अभाव, किसी की भी निन्दादि न करना, सभी पर निःस्वार्थ दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा (और) व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि (एवं) किसी के प्रति भी शत्रुभाव का न होना (और) अपने में पूज्यता (श्रेष्ठता) के अभिमान का अभाव (ये सब तो) हे अर्जुन! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए (संत) पुरुष के (लक्षण) हैं।"

रामचरित मानस ने सन्तों के अस्तित्व को ही अत्यन्त सुखकारी एवं सुखद माना है। कहा गया–

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।

(उ॰का॰ 121/11)

अर्थात् "सन्तों का अभ्युदय सदैव ही सुखदायक होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिए सुखदायक होता है।"

यानी संतों का अस्तित्व सूर्य एवं चाँद की भाँति बिना किसी भेदभाव के सभी के प्रति सुखदायक एवं हितकारक होता है। वे–**विरोधं नाधिगच्छंति ये त उत्तमपुरुषाः** (सभा॰ 73/6)–जो (किसी से) विरोध नहीं रखते उत्तम पुरुष होते हैं। सन्तों के आचरण के सम्बन्ध में रामचरित मानस में यह भी कहा गया है–

सन्त सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असन्त अभागी।।
भुर्ज तरु सम सन्त कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला।।

(उ॰का॰ 121/8)

अर्थात् "सन्त (सज्जन लोग) दूसरों की भलाई एवं हित के लिए दुख सहते हैं और अभागे असन्त (दुष्ट लोग) दूसरों को दुख पहुँचाने के लिए। कृपालु 'सन्त' भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं।"

सन्तों का सहज स्वभाव बताते हुए पक्षिराज गरुड़ से काकभुसुण्डि जी कहते हैं–

पर उपकार बचन मन काया। सन्त सहज सुभाउ खगराया।।

(उ॰का॰ 121/7)

"हे पक्षिराज! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना यह सन्तों का सहज स्वभाव होता है।"

अर्थात् सन्त एवं सज्जन लोगों की प्रकृति ही होती है दूसरों की सेवा एवं उपकार करना और सभी को सुख पहुँचाने हेतु प्रयास करना। यही कारण है कि जगत् के लोग ऐसे नेक और सज्जन लोगों के अस्तित्व को अमृत के समान और दुष्टों को विष के समान समझते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण कहता है—

पीयूष भोजनात्स्वर्गवासादपि च दुर्लभः।
सत्संगमः सुखमयोऽप्यसंत्संगो विषाधिकः।।

(1/23/121)

अर्थात् "सन्तों की संगति अमृत-भोजन एवं स्वर्ग में निवास करने से भी दुर्लभ तथा सुखमय होती है और असज्जन एवं दुष्टों का साथ विष (ज़हर) से भी अधिक (निकृष्ट) होता है।"

असन्त

मनुष्यों का एक दूसरा वर्ग दुष्ट एवं अत्याचारी असन्तों का है। इस दूसरे वर्ग 'असन्त' एवं दुष्ट मनुष्यों के सम्बन्ध में काकभुशुण्डि जी के वचन रामचरितमानस में अंकित हैं—

सन इव खल पर बन्धन करई। खाल कढाइ बिपति सहि मरई।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।

(उ॰का॰ 121/9)

अर्थात् "दुष्ट लोग सन (एक प्रकार का पौधा, जिससे रस्सी तैयार होती है) की भाँति दूसरों को बाँधते हैं और (उन्हें बाँधने के लिए) अपनी खाल तक खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार (अहित) करते हैं।"

इन दुष्टों एवं असन्तों की मानसिकता एवं दुराचरण और पारलौकिक

परिणाम का उल्लेख करते हुए रामचरित मानस में कहा गया है—

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।

(उ॰का॰ 121/2)

अर्थात् "(दुष्ट लोग) जब किसी की विपत्ति (यानी किसी को विपति में पड़ा हुआ) देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं, मानो जगत् भर के राजा हो गए हों। वे स्वार्थपरायण परिवारवालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लंपट (दुराचारी) और अत्यन्त क्रोधी होते हैं।"

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।।

(उ॰का॰-39)

"वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर (अर्थात् अत्यधिक दुष्ट नीच अधम) और पापमय (पापी) मनुष्य नर-शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं।"

इन दुष्ट राक्षसों (असंतों) के हृदय दूसरों को सुखी देखकर हमेशा ही जलते रहते हैं। श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान जी के एक प्रश्न के उत्तर में कहा—

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।

(उ॰का॰ 39/2)

अर्थात् "दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (ख़ज़ाना) पा ली हो।"

रामचरित मानस का यह भी कहना है कि दुष्ट लोग अत्यन्त कपटी, कुटिल (छली) और अकारण ही दूसरों से वैर रखनेवाले होते हैं। कहा—

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटि कुटिल मलायन।।

बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।

(उ॰का॰ 39/3)

अर्थात् "वे काम, क्रोध, मद (घमण्ड) और लोभ के परायण (अति आसक्त) तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं।"

इन दुष्टों के सम्बन्ध में श्री रामचन्द्रजी कहते हैं—

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

(उ॰का॰ 39/4)

अर्थात् "उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। जैसे मोर (बहुत ही मीठा बोलता है, परन्तु उस) का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपों को भी खा जाता है, वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं (परन्तु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं।)।"

ईश्वर के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने हृदय में कपट रखनेवाले दुष्ट असन्तों के मिथ्याचरण के सम्बन्ध में कहा—"हृदय में कपट और दुष्टता रखनेवाले (मुनाफ़िक़) की तीन निशानियाँ हैं, वह यह कि—वह जब भी बोलता है, तो झूठ बोलता है, जब वादा करता या किसी को वचन देता है, तो उसे पूरा नहीं करता, वचन-भंग करता है और जब उसे अमीन (धरोहर का रक्षा करनेवाला) बनाया जाता है, तो वह उसमें बेईमानी करता है।" (हदीस : बुख़ारी-6095)

यहाँ अमीन का शब्द बहुत संग्राहक है। अमीन वे लोग भी होते हैं जो किसी काम के ज़िम्मेदार व अधिकारी होते हैं। जब कोई उत्तरदायित्व उनके सिपुर्द किया जाता है, तो जो सन्त प्रवृत्ति के होते हैं वे ख़ूबी के साथ अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का पूरा निर्वाह करते हैं और जो दुष्ट, असन्त होते हैं वे लक्षेदार बातें करके और झूठी बातें बनाकर लोगों को धोखा दे जाने में सफल रहते हैं। अतः दुष्ट असन्त झूठ, फ़रेब और कुकृत्यों का पिण्ड होते हैं। इनका अस्तित्व ही जगत् एवं जगत् के रहनेवालों को विपत्ति में डालने, कष्ट

पहुँचाने और नरकमय जीवन बना देने का होता है। रामचरित मानस में है—

दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।

(उ॰का॰ 121/10)

अर्थात् "दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत् के दुख के लिए ही होता है।"

श्रीकृष्ण जी ने कहा—

प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।। (गीता॰ 16/9)

"सबका अपकार (अहित) करनेवाले क्रूरकर्मी (अत्याचारी) मनुष्य (केवल) जगत् के नाश के लिए ही समर्थ (उत्पन्न) होते हैं।"

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।।

(गीता॰ 16/7)

"आसुर-स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति (इन दोनों को) भी नहीं जानते। (इसलिए) उनमें न (तो) बाहर-भीतर की शुद्धि (होती) है, न श्रेष्ठ आचरण (होता) है और न सत्यभाषण ही (होता) है।"

आदि शंकराचार्य जी उपरोक्त श्लोक के प्रकाश में कहते हैं—

"आसुरी स्वभाववाले (असन्त) मनुष्य प्रवृत्ति को अर्थात् जिस किसी पुरुषार्थ के साधनरूप कर्तव्य-कार्य में प्रवृत्त होना उचित है, उसमें प्रवृत्त होने को और निवृत्ति को अर्थात् उससे विपरीत जिस किसी अनर्थकारक कर्म से निवृत्त होना उचित है; उससे निवृत्त होने को भी नहीं जानते। केवल प्रवृत्ति-निवृत्ति को नहीं जानते, इतना ही नहीं उनमें न शुद्धि होती है, न सदाचार होता है और न सत्य ही होता है। यानी आसुरी प्रकृति के मनुष्य अशुद्ध, दुराचारी, कपटी और मिथ्यावादी ही होते हैं।"[1]

मतलब यह कि दुष्ट लोग झूठ के पुलिंदा होते हैं। इन झूठे और कपट रखनेवाले पापियों का अन्तिम परिणाम यह है कि—

1. श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य, गीता प्रेस, पृ॰ 384

निकृती हि नरो लोकान् पापान् गच्छत्यसंशयम्।।

(अनु॰ 105/8)

अर्थात् "कपट करनेवाला मनुष्य निःसन्देह पापमय लोकों (नरक) में जाते हैं।"

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।

"मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।"

यह 'अपना' है और वह 'पराया'

'सन्त' अर्थात् सज्जन पुरुष एवं 'असन्त' अर्थात् दुष्ट लोगों की मानसिकता एवं दृष्टिकोण में 'स्व' और 'पर' को लेकर भी बड़ा अन्तर होता है। 'स्व' यानी यह मेरा है और 'पर' अर्थात् वह पराया या दूसरा है; का भेद करनेवाली निकृष्ट मानसिकता भी दुष्ट और दुर्जन अर्थात् 'असन्त' लोगों में पाई जाती है। जबकि 'सन्त' एवं भद्र व सज्जन पुरुषों में 'स्व' और 'पर' के भेद का अभाव पाया जाता है। भले लोगों एवं कुलीन भद्र पुरुषों की दृष्टि में जगत् के सम्पूर्ण मनुष्य अपने और अपने कुटुम्ब के समान होते हैं। चाहे कोई किसी भी क्षेत्र या भूभाग का रहनेवाला हो, चाहे कोई काला हो या गोरा, चाहे कोई किसी भी मानवीय धर्म, नीति या जीवन-पद्धति का अनुपालन करनेवाला हो सन्त एवं सज्जन लोग सभी के प्रति आत्मीयता का भाव रखते हैं। ये सभी के प्रति अत्यन्त उदार एवं सागर के समान विशाल हृदय होते हैं, जबकि दुष्ट एवं असन्त अत्यन्त संकीर्ण दृष्टि, तुच्छ एवं घटिया विचारवाले होते हैं। महोपनिषद् में कहा गया है—

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

(6/71/72)

अर्थात् "यह मेरा अपना है और वह नहीं है (यानी पराया है), ऐसे निकृष्ट विचार तुच्छ (अधम) मनुष्यों के होते हैं। उदार चरितवालों (सन्त एवं विशाल हृदयवालों) के लिए तो समस्त वसुधा (पृथ्वी) ही अपना परिवार होता है।"

इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने सम्पूर्ण मानवजाति को ईश्वर का 'अयाल' (कुटुम्ब) कहा है अर्थात् कोई किसी से अलग नहीं है, बल्कि सभी एक परिवार की तरह हैं और उन्हें कुटुम्बीय प्रेम करना चाहिए। कहा—

अल्-ख़ल्-क़ु इयालुल्लाहि फ़-अहब्बुल ख़ल्क़ि इल-ल्लाहि मन् अह्स-न इ-ल इयालिहि।। (हदीस : अल-बैहक़ी, मआरिफुल हदीस-1485)

"सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर का कुटुम्ब है (कि वही सबका पालनहार है)। अतः ईश्वर (अल्लाह) को अपनी सम्पूर्ण सृष्टि में अधिक प्रिय वे लोग हैं, जो उसके कुटुम्ब से प्रेम एवं बेहतरीन सुलूक करते हैं।"

समस्त मानवजाति के एकत्व और एक समान होने का आधार स्पष्ट करते हुए क़ुरआन मजीद में कहा गया—

या अय्युहन्नासु इन्ना ख़लक़्नाकुम्-मिन् ज़करिं व उन्सा।। (49/13)

अर्थात् "ऐ लोगो! हमने तुमको एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया है।"

यानी पूरी दुनिया में जितने भी मनुष्य हैं, सभी का पूर्वज और मूल एक ही स्त्री और पुरुष है। ईश्वर ने सबसे पहले एक पुरुष और एक स्त्री की ही सृष्टि की, तत्पश्चात् उसी जोड़े से सन्तानें बढ़ती गईं। अतः सभी एक ही जाति और एक ही समुदाय हैं। कोई भी किसी से अलग नहीं, सभी एक-दूसरे के अपने और अपने परिवार के समान हैं।

आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी का भी कहना है—

अव्वल अल्लाह नूर उपाया क़ुदरत के सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपजया कौन भले को मंदे।।

अर्थात् "ईश्वर ने प्रथमतः प्रकाश प्रकट किया, तत्पश्चात् अपनी

सृजन-शक्ति से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की। एक ही प्रकाश से सभी की उत्पत्ति है; इसलिए कौन श्रेष्ठ और कौन निम्न है? (अतः सभी एक समान हैं।)"

सभी मनुष्य आपस में प्यार करें, वैर-भाव पैदा करनेवाली हर बात को भुलाकर प्रेमपूर्ण वातावरण को बनाए रखें। अथर्ववेद में भी निर्देश है—

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातविवाघ्न्या।।

(3/30/1)

अर्थात् "प्रेमपूर्ण हृदय के भाव, मन के शुभ विचार और आपस की निर्वैरता (वैर या शत्रुता का न होना) आप अपने अन्दर में स्थिर कीजिए। तुममें प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ ऐसा प्रेमपूर्ण बर्ताव करे, जिस प्रकार नए उत्पन्न हुए बछड़े से उसकी माँ गाय प्यार करती है।"[1]

सज्जन एवं शिष्ट लोगों पर इसी शिक्षा एवं विशाल-हृदयता और उदारता का नैसर्गिक प्रभाव होता है कि संसार में पृथ्वी पर किसी भी भूभाग के व्यक्ति को जब वे पीड़ित या दुखी देखते हैं, तो वे ऐसे व्याकुल हो उठते हैं कि जैसे उन्हीं पर वह संकट आ पड़ा हो। वे उस पीड़ा से उन लोगों को निकालने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। इसी 'स्व' और 'पर' में अन्तर न होने का कारण होता है कि वे दूसरे के साथ वह व्यवहार नहीं करते, जिसे वे स्वयं अपने लिए पसन्द नहीं करते। उनकी दृष्टि में समदृष्टिता एवं समदर्शिता का साम्राज्य होता है। महाभारत इन सज्जनों के इस आचरण एवं व्यवहार को सम्पूर्ण धर्म कहता है कि यही वास्तव में पूर्ण धर्म है। कहा गया—

न तत् परस्य संद्रध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते।।

(13/113/8)

अर्थात् "जो बात अपने को अच्छी न लगे वह दूसरों के प्रति भी

1. दामोदर सातवलेकर जी, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, पृ. 133

नहीं करनी चाहिए। यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। इससे भिन्न जो बर्ताव होता है, वह कामनामूलक स्वार्थपरता है।"

वास्तव में धर्म का गुण ही परोपकार और दूसरों का हित चाहना और सभी के प्रति आत्मीयता एवं उदारभाव का रखना है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाना या तकलीफ़ में डालना यही अधर्म है। श्री रामचन्द्र जी हनुमान जी को धर्म-अधर्म का सदुपदेश देते हुए कहते हैं—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(रा॰च॰उ॰का॰ 41/1)

अर्थात् "हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुख पहुँचाने के समान कोई नीचता (अधर्म) नहीं है।"

श्री रामचन्द्र जी द्वारा यह कहा जाना कि दूसरों के साथ भलाई और उपकार के समान कोई धर्म नहीं, इसमें समाज के हर भेद-भाव को मिटाकर उपकार के मार्ग को अपनाने की बहुत बड़ी प्रेरणा पाई जाती है। हर दूसरे को गले लगाना, बीच के हर भेदभाव को मिटाकर मानवमात्र से प्रेम करना, सबका हित चाहना सभी महापुरुषों की शिक्षा की मूल आत्मा रही है। किसी भी महापुरुष या धर्म ने किसी को तकलीफ़ पहुँचाना पसन्द नहीं किया है।

ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है कि जिसकी दुष्टता से उसका पड़ोसी दुखी हो, वह मोमिन (मुस्लिम) नहीं। (हदीस : बुख़ारी-6016)

दूसरों की सेवा के महत्व को व्यक्त करते हुए क़ुरआन कहता है—

"नेकी यह नहीं है कि तुमने अपने चेहरे पूरब की ओर कर लिए या पश्चिम की ओर, बल्कि नेकी यह है कि.....ईश्वर के प्रेम में अपना मनपसन्द माल नातेदारों और अनाथों पर, निर्धनों और मुसाफ़िरों पर, सहायता के लिए हाथ फैलानेवालों और दास बना लिए गए निर्दोष लोगों की रिहाई पर ख़र्च करे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 आयत-177)

क़ुरआन में नेक लोगों के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

व युत्इमू-नत्तआ-म अला हुब्बिही मिस्कीनं व यतीमं-व असीरा।।

(क़ुरआन, सूरा-76, आयत-8)

"ईश्वर के प्रेमार्थ ये मुहंताज और अनाथों और बंदियों को खाना खिलाते हैं।"

इन नेक एवं संत-प्रवृत्ति के लोगों की सेवा निस्स्वार्थ होती है। ये नेक लोग जिनकी सेवा या उपकार करते हैं, उनसे कहते हैं कि–

"हम तुम्हें मात्र ईश्वर के लिए खिला रहे हैं। हम तुमसे न कोई बदला चाहते हैं और न किसी प्रकार का धन्यवाद।"

(क़ुरआन सूरा-76, आयत-9)

हदीसशास्त्र में आया है कि–

"मनुष्यों में संबसे अच्छा वह है, जो मनुष्यों को लाभ व फ़ायदा पहुँचाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा–

"यदि कोई व्यक्ति रास्ते से लोगों को कष्ट पहुँचानेवाली चीज़ हटा दे, तो यह भी सदक़ा (बड़ा दान) है।" (हदीस : मुस्लिम)

महाभारत का कहना है–**सर्वेषु भूतेषु प्रीतिमान भव।।** (12/88/32)

अर्थात् "तुम सभी से प्रेम रखो।"

अभिप्राय यह कि हृदय में सभी के प्रति आत्मीयता एवं प्रेम करना समस्त मनुष्यों की सेवा, सम्पूर्ण मानवजाति से स्नेह करना, सभी के साथ बिना भेद-भाव उपकार एवं सदाचार की नीति अपनाना नेक और संतजनों का मूल गुण और धर्म का प्रमुख लक्षण है।

किन्तु खेद है

ऐसी स्पष्ट शिक्षाओं के उपरान्त भी हमारे समाज के कुछ लोग कितने क्रूर और कठोर होते जा रहे हैं। वे असन्तों एवं राक्षसों का आचरण अपनाकर कितने निर्दयी और पाषाणहृदय होकर मानवजाति को पीड़ा पहुँचाने का हर सम्भव प्रयास करते रहते हैं और ऐसा प्रयास कि उनके इस कुकृत्य से मानवता कराह उठती है। ऐसे दुष्टों को यदि थोड़ा भी धार्मिक शिक्षाओं पर विश्वास हो तो जान लें कि मिथ्याचारी (पापी) पुरुषों को उनका अधर्म ही मार डालता है। अर्थात्–**मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः।।** (द्रोण॰ 54/42)

रामचरित मानस के शब्दों में—

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा।।

(उ॰का॰ 41/2)

अर्थात् "मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महासंकट सहने पड़ते हैं।"

अत्याचारियों को तो परलोक में जो भी दण्ड ईश्वर देगा वह अलग है, लेकिन दुष्टों को इहलोक में भी दण्ड मिल जाता है। अवसर आने पर ऐसे मानवता-विरोधियों को विषैले सर्प की तरह लोग कुचल देते हैं। वाल्मीकि कहते हैं—

कर्म लोक विरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम्।।

(वा॰रा॰ 3/29/4)

"जो लोक-विरोधी कठोर कर्म करनेवाला है उसे सब लोग सामने आए दुष्ट सर्प की भान्ति मारते हैं।"

वास्तव में जुल्म एवं अत्याचार का मार्ग अपनाकर कोई जीवन जीता है, तो उसका वह जीवन, जीवन नहीं; बल्कि मृत्यु है। इसी प्रकार किसी को किसी भी प्रकार की शक्ति एवं सामर्थ्य प्राप्त है और वह उस शक्ति एवं सामर्थ्य से दूसरों की सेवा एवं उपकार नहीं करता, तो उसका वह सामर्थ्य निरर्थक है। शिवमहापुराण में कहा गया—

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै।
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत्।।

(शिव॰ को॰ 40/57)

अर्थात् "जो समर्थ होते हुए उपकार नहीं करता, उसका समर्थ होना व्यर्थ है, वह नरकगामी होता है।"

महाभारत का परामर्श

महाभारत में क्रूरता और किसी को भी तकलीफ़ में डालनेवाले कर्म से बचे रहने की चेतावनी देते हुए परामर्श दिया गया—

न बलस्थोऽहमस्मीति नृशंसानि समाचरेत्।। (शांतिपर्व 133/19)

अर्थात् "अपने-आपको बलवान समझकर क्रूर कर्म न करो।"

दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वांश्चरेन्नृशंस न हि जातु।। (आदिपर्व 92/17)

अर्थात् "दैववश आपत्ति में फँसने पर भी विद्वान कभी क्रूर (निर्दय) कर्म न करे।"

अठारह पुराणों का सार भी यही है

महर्षि वेदव्यास जी, जिन्होंने वेदों को संकलित किया और महाभारत सहित अठारह पुराणों की रचना की है। उनके अठारह पुराणों का सारांश विद्वजन इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

"मर्हिष व्यास जी ने अठारह पुराणों में दो ही विशिष्ट बातें कही हैं। पहली यह कि परोपकार करना ही पुण्य है और दूसरी यह कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है।"

अर्थात् 'परोपकार' ही धर्म एवं पुण्य कर्म है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाना अधर्म एवं पाप है—की व्याख्या में महर्षि व्यास जी ने अठारण पुराणों की रचना कर दी है। जीवन में हम देखते भी हैं कि परोपकार और दूसरों को सुख पहुँचानेवाले कर्म ऐसे शुभ कर्म होते हैं कि लोग सहज ही ऐसे व्यक्ति से प्रेम करने लगते हैं। कहा भी गया है—

भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम्।।

(अनुशासन पर्व 104/10)

अर्थात् "लोककल्याण के कर्म करनेवाले से लोग प्रेम करने लगते हैं।"

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।।

"इस संसार में अपने लिए कौन मनुष्य नहीं जीता है। परन्तु जिसका जीवन परोपकार के लिए है उसका ही जीवन, जीवन है।"

ईश्वर भी उन्हीं से प्रेम करता है

लोगों के हितकारी कर्म एवं मानवजाति से प्रेम करनेवाले से ईश्वर भी प्रेम करता है और वस्तुतः उसी की भक्ति ईश्वर को प्रिय लगती है श्रीमद्भगवद्गीता में इस तथ्य को श्रीकृष्ण जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणा एव च।
निर्ममो निरहंकार सम दुःख सुख क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
(12/13-14)

अर्थात् "हे अर्जुन! मैं उन भक्तों को प्यार करता हूँ, जो कभी किसी से द्वेष-भाव नहीं रखते, सब जीवों के साथ मित्रवत् और दयालुता का व्यवहार करते हैं। ममतारहित, अहंकार-शून्य, दुख और सुख में एक-सा रहनेवाला, सब जीवों के अपराधों को क्षमा करनेवाला, सदैव सन्तुष्ट मेरा ध्यान करनेवाला, विरागी, दृढ़-निश्चयी और जिसने अपना मन तथा बुद्धि मुझे समर्पित कर दी है, ऐसे भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं।"

क़ुरआन में कहा गया है कि जो उपकार और भलाई के कार्य करते हैं, ईश्वर उन्हीं को पसन्द करता है। कहा गया है—

व अह्सिनू। इन्नल्ला-ह युहिब्बुल् मुहसनीन।। (2/195)

अर्थात् "भलाई और उपकार करो। उपकार करनेवालों को ईश्वर प्रिय रखता है।"

एक और स्थान पर कहा गया—

"ईश्वर पर दृढ़ आस्था के साथ अडिग रहें, अच्छे कर्म करते रहें, जिस चीज़ से रोका गया है रुके रहें, ईश्वरीय आदेश को मानें, ईशपरायणता के साथ उपकार की नीति अपनाए रखें, तो ईश्वर ऐसे सुचरित्र लोगों से बहुत प्रेम करता है।" (क़ुरआन, 5/93)

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय-11; श्लोक-55 में ईश्वर के

वचन कृष्ण महाराज जी के श्री मुख से अभिव्यक्त हैं—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।

अर्थात् "हे अर्जुन! जो व्यक्ति सकाम कर्मों तथा मनोधर्म के कल्मष (मैल व दोष) से मुक्त होकर, मेरी शुद्ध भक्ति में तत्पर रहता है, जो मेरे लिए ही कर्म करता है, जो मुझे ही जीवन-लक्ष्य समझता है और जो **सभी के प्रति मैत्री-भाव** रखता है, वह निश्चय ही मुझे प्राप्त करता है।"

उपरोक्त शिक्षाओं से भी ज्ञात होता है कि निर्मल भक्ति हेतु अपनी बुरी इच्छाओं का अनुसरण नहीं करना चाहिए और न कोई स्वार्थपरता पर आधारित कार्य करना चाहिए तथा सबसे बड़ा भाव यह होना चाहिए कि सभी के प्रति मित्रत्व का भाव हो अर्थात् किसी के प्रति भी शत्रुता की भावना नहीं होनी चाहिए। अगर कोई दुष्ट है तो उस दुष्ट की दुष्टता से घृणा होनी चाहिए, न कि उस मनुष्य से। इस प्रकार का शुभ-भाव रखने एवं शुभ-कर्म करनेवाला हर प्रकार की दुर्गति और संकटों से सुरक्षित रहता है और मृत्योपरान्त सुगति का भी अधिकारी होता है।—

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 6/40)

अर्थात् "हे प्यारे! शुभ-कर्म करनेवाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।"

एक महत्वपूर्ण विमर्श

सारांश यह कि धर्म उदारता, विशाल-हृदयता और मानव-जाति से प्रेम करने की शिक्षा देता है। मनुष्य को समझना भी चाहिए कि जब सम्पूर्ण जगत् का रचयिता एक ही शक्ति है, जिसके प्रति वेद में कहा भी गया है कि—**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** (ऋ॰ 1/164/46, अथर्व॰ 9/10/28, नि॰ 7/18) अर्थात् एक ही सत्य है, जिसे विद्वजन अनेक नामों से याद करते हैं। यानी अपनी-अपनी भाषा में सर्व जगत् के स्रष्टा को अपना एक अलग-अलग नाम देते हैं और

उन नामों से स्मरण करते हैं। किन्तु यथार्थतः वह शक्ति एक ही है। क़ुरआन का भी कहना है—

क़ुलिद्ऊल्ला-ह अविद्ऊर्रहमा-न अय्याम्मा तद्ऊ फ़- लहुल् अस्माउल हुस्ना।। (17/110)

अर्थात् "अल्लाह कहकर पुकारो या रहमान (करुणामय) कहकर, जिस नाम से भी पुकारो सभी उसी के शुभ नाम हैं।"

अतः समस्त मानवजाति उसी एक शक्ति (परमेश्वर) का परिवार है और मानवीय स्तर पर सभी मनुष्य एक-दूसरे के एक समान पवित्र एवं सम्माननीय हैं। सभी एक-दूसरे के भाई हैं। आचरण एवं चरित्र के आधार पर सन्त-असन्त में बड़ा अन्तर अवश्य है। असन्तों को अपने कर्मों एवं कुकृत्यों पर अवश्य विचार करना चाहिए और अत्याचार एवं ज़ुल्म-ज़्यादती की नीति का अवश्य परित्याग करना चाहिए। किसी भी अभिमान में नहीं पड़ा रहना चाहिए। क्योंकि—

मानाभिभूतानपचिराद् विनाशः समपद्यत्।। (वन॰94/12)

अर्थात् "जो अभिमान से लिप्त थे उनका शीघ्र ही विनाश हो गया।" अतः **"मात्मना विस्मयं गमः"** (आदि॰ 135/9)—अपने आप पर गर्व मत करो। **इन्नल्ला-ह ला युहिब्बु मन् का-न मुख़्तालन फ़ख़ूरा।** (क़ुरआन, 4/136)— "निस्सन्देह ईश्वर किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो अभिमान करे और शेखी बघारे।"

मनुष्य को चाहिए कि यदि उसमें दुष्टता के अंश विद्यमान हैं, तो उनका परित्याग करे और मानवमात्र से प्रेम करे। समस्त मनुष्य बिना भेदभाव एक-दूसरे से प्रेम करें, एक-दूसरे का सम्मान करें और एक-दूसरे के प्रति कल्याणकारी नीति अपनाएँ। किसी को भी कमज़ोर या विवश देखकर उसके साथ दुर्व्यवहार न करें और न किसी विपत्ति में डालें। क्योंकि यदि हमने किसी बेबस को पीड़ित किया और उसके मुख से कोई बद्दुआ (अभिशाप या आह) निकल गई, तो वह अपना असर दिखाकर रहती है। ईश्वर—जिसकी मुट्ठी में सारा जगत् है, जिसकी शक्ति की तुलना में बड़ी-से-बड़ी सल्तनत और बड़ा-से-बड़ा साम्राज्य एक कण या ज़र्रे के समान है—उस दुखियारे की पुकार या फ़रियाद को अवश्य सुनता है। पुराण कहता है—

स्वान्तर्दुःखेन दुःखार्तो यो यं शपति निश्चितम्।
तं शापं खण्डितं शक्तो न विधाता जगत्पतिः।।

(ब्र॰वै॰पु॰ 30/99)

अर्थात् "अन्तरात्मा के दुख से दुखी होकर जो जिसको शाप (बद्दुआ) देता है, उसके शाप का खण्डन जगत्पति विधाता (ईश्वर) भी नहीं करता।"

ईश्वर के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है—

"पीड़ित की बद्दुआ से बचो, इसलिए कि उसके और ईश्वर के मध्य कोई परदा नहीं होता।"

(हदीसशास्त्र बुख़ारी-1469, मुस्लिम-19)

धोखा न खाएँ

जो व्यक्ति कोई भी अत्याचार या पाप करता है और वह अपने को उन्नतिशील पाता है, तो यह उसके लिए धोखा है। यह ईश्वर की ओर से उसके लिए ढील होती है और मनुष्य के लिए परीक्षा। मनुष्य को जानना चाहिए कि मनुष्य का पापकर्म उसका पीछा अवश्य करता है। जब पाप अपना प्रभाव दिखाता है, तो पापी तड़पकर रह जाता है और अन्ततः विनाश को प्राप्त होता है।

अत्याचारी व ज़ालिम की आरम्भिक उन्नति और उसकी अन्ततः पकड़ के सन्दर्भ में क़ुरआन क़हता है—

"और यह ढील जो हम (अर्थात् ईश्वर) उन्हें दिए जाते हैं, इसे अधर्मी अपने लिए अच्छा न समझें। यह ढील तो हम उन्हें सिर्फ़ इसलिए दे रहे हैं कि वे पापकर्म में और अधिक बढ़ जाएँ। उनके लिए तो अत्यन्त अपमानजनक यातना है।" (क़ुरआन, 3/179)

अतएव, मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर से टक्कर न लेकर मानव-जीवन और इस अवसर का महत्व समझे। सभी प्रकार की क्रूरता, दुष्टता और अत्याचार से दूर रहकर मानव-पीड़ा का एहसास करे और प्रयास करे कि उसके किसी भी कर्म और वचन से किसी भी दूसरे व्यक्ति को पीड़ा न पहुँचने पाए।

यही अहिंसात्मक पथ ही तमाम धर्मग्रन्थों की दृष्टि में धर्म है। रामचरित मानस में कहा गया है–

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गरीसा।।
(उ॰का॰ 121/11)

अर्थात् "वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना गया है और दूसरों की निन्दा करने के समान भारी पाप नहीं है।"

मनुष्य को विचार करना चाहिए

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।
(रा॰च॰मा॰उ॰का॰ 43/4)

अर्थात् "बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सभी ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाज़ा है। इसे पाकर भी जिसने अपने परलोक को न संवारा–

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।।
(रा॰च॰मा॰उ॰का॰ दो॰-43)

"वह परलोक में दुख पाता है। सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है।"

ज़ालिम व अत्याचारियों की बातों में आकर जो लोग संसार में पाप और अनैतिक मार्ग पर चल रहे हैं, उनको परलोक में बहुत ही पछताना पड़ेगा। क़ुरआन कहता है–

"जब वह (परमेश्वर) दण्ड देगा उस समय दशा यह होगी कि वही (ज़ालिम) पेशवा और नेता जिनका संसार में अनुपालन किया गया था, अपने पदानुसरण करनेवालों से विरक्त हो जाएँगे, किन्तु दण्ड पाकर रहेंगे और उनके सारे उपक्रमों और साधनों का क्रम कट

जाएगा। वे लोग जो संसार में उन (ज़ालिमों) के पीछे चलते थे, कहेंगे कि क्या अच्छा होता, हमको फिर एक अवसर दिया जाता तो जिस प्रकार आज ये हमसे विरक्त हो रहे हैं, हम भी इनसे विरक्त होकर दिखा देते। इस प्रकार परमेश्वर इन लोगों के वे कर्म जो ये संसार में कर रहे हैं, इनके सामने इस प्रकार लाएगा कि ये पश्चातापों और ग्लानियों के साथ हाथ मलते रहेंगे, किन्तु नरकाग्नि से निकलने का कोई मार्ग नहीं पाएँगे। (2/166-167)

सच्चे दिल से प्रण करें

आएँ हम अपने सभी भेद-भाव भुलाकर—चाहे कोई किसी भी धर्म, जीवन-पद्धति, रीति का माननेवाला हो या पृथ्वी के किसी भी भूभाग का रहनेवाला हो या रहता हो सभी के प्रति विशुद्ध एवं सच्चे हृदय से यह बोलें और इसे अपने मन, वचन और कर्म से व्यावहारिक रूप देने का प्रण लें कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्।।

अर्थात् "सभी सुखी रहें, सभी रोग-मुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुख का भागी न बनना पड़े।"

हे प्रभो!

अल्लिफ़ अल्लाहुम-म अ-लल-ख़ैरि बै-न क़ुलूबिना व असलिह ज़ा-त बैनिना वह्दिना सुबुलस्सलामि व नज्जिना मिनज़्ज़ुलु-माति इलन्नूरि।।

"हे परमेश्वर हमारे हृदयों को भलाई पर एकनिष्ठ कर दे और हमारे पारस्परिक सम्बन्धों को सुधार दे। हे प्रभु! हमें शान्ति-मार्ग पर चला और (अज्ञानता के) अन्धकार से मुक्ति देकर (ज्ञान के) प्रकाश की ओर ले आ।"

प्रार्थना है कि ईश्वर हमें सन्मार्ग पर चलाए, हमारी सहायता करे और मृत्युपरान्त हमें मुक्ति और स्वर्ग प्रदान करे!!! (आमीन)

—❖—